अनुबोधन, खण्ड 2, अंक 2, अप्रैल–जून 2026, पृष्ठ 82–85
जर्नल वेबसाइटः
https://anubodhan.org
ISSN: 3049-4184 (प्रिन्ट) 3108-1185 (ऑनलाइन)
https://doi.org/10.65885/anubodhan.v2n2.2026.064

पुरुषार्थ चतुष्टय की साम्प्रतिक व्याख्या

डॉ० सूर्यकान्त त्रिपाठी *

प्राप्तिः 8 अप्रैल 2026 / संशोधित 11 जून 2026 / स्वीकृतः 12 जून 2026 / प्रकाशित ऑनलाइन: 27 जून 2026
Copyright © 2026 Author(s). Published by Siri Research Foundation. This is an open access article distributed under the Creative Commons Attribution International License (CC BY 4.0).

सारांश

भारतीय दार्शनिक परम्परा में पुरुषार्थ चतुष्टय, धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष, मानव जीवन के समग्र विकास का आधार माना गया है। प्रस्तुत शोध लेख में पुरुषार्थ चतुष्टय की पारम्परिक अवधारणा का समकालीन संदर्भों में पुनर्विश्लेषण किया गया है। अध्ययन का उद्देश्य यह स्पष्ट करना है कि वर्तमान सामाजिक, आर्थिक, नैतिक एवं आध्यात्मिक संकटों के समाधान में पुरुषार्थ चतुष्टय की अवधारणा किस प्रकार प्रासंगिक और उपयोगी है। लेख में धर्म को संकीर्ण धार्मिक पहचान के स्थान पर मानवीय कर्तव्यों, नैतिक मूल्यों और सामाजिक उत्तरदायित्व के रूप में व्याख्यायित किया गया है। अर्थ को न्यायपूर्ण अर्जन, सदुपयोग और लोककल्याण से जोड़ा गया है, जबकि काम को केवल इन्द्रियसुख नहीं, बल्कि रचनात्मक आकांक्षा, कर्मशीलता और जीवन–उद्यम के रूप में देखा गया है। मोक्ष को जीवन से पलायन नहीं, बल्कि अज्ञान, लोभ, मोह और अहंकार से मुक्ति के रूप में समझाया गया है। प्रस्तुत शोध लेख में वर्णनात्मक तथा विश्लेषणात्मक शोध प्रविधि का उपयोग किया गया है। वैदिक, उपनिषदिक, स्मृतिग्रंथीय तथा गीता–आधारित संदर्भों के माध्यम से यह प्रतिपादित किया गया है कि पुरुषार्थ चतुष्टय आज भी व्यक्तिगत उन्नति, सामाजिक समरसता और राष्ट्रीय विकास के लिए एक प्रभावी जीवन–दर्शन प्रस्तुत करता है।

कुंजी शब्दः पुरुषार्थ चतुष्टय, धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष

भारतीय संस्कृति में पुरुषार्थ चतुष्टय का महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। वास्तव में कहा जाय तो यह भारतीय संस्कृति का प्राणतत्त्व है। मनुष्य की जीवनचर्या पुरुषार्थ चतुष्ट्य से संचाल्यमान होती है।

भारतीय संस्कृति के संदर्भ में धर्म शब्द अंग्रेजी के रिलीजन का पर्यायवाची नहीं है। आंग्ल भाषा का रिलीजन शब्द सम्प्रदाय या पन्थ का अर्थ देता है। महाभारत में धर्म को परिभाषित करते हुए वेदव्यास कहते हैं–'धारणात् धर्ममित्याहुः धर्मो धारयते प्रजाः। अर्थात् धर्म आचरण और व्यवहार का विषय है। मनुस्मृतिकार धर्म के लक्षण को उपस्थापित करते हुए कहते हैं–

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्।। [1]

धैर्य, क्षमा, सहन शीलता, चोरी न करना, मन वाणी तथा कर्म की पवित्रता तथा आभ्यन्तरिक और बाह्य प्रदूषण को रोकना, इन्द्रिय निग्रह, धी अर्थात् भूत, भविष्य और वर्तमान पर प्रतिभा के साथ विचार करना, विद्या, सत्य, अक्रोध– ये दश घटक मनुष्यता के मूल में हैं। यदि निष्पक्ष तथा पूर्वाग्रहरहित होकर हम सभी विचार करें, तो विश्व के प्रत्येक राष्ट्र के संविधान में इन्हीं तत्त्वों को पायेंगे, परन्तु दुर्भाग्यपूर्ण तथ्य

* सहायक आचार्य, संस्कृत एवं प्राकृत भाषा विभाग, दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर
✉ डॉ० सूर्यकान्त त्रिपाठी, E-mail: suryakanttripathi4@gmail.com

यह है कि कुछ अल्पज्ञ लोग मनु के इस लक्षण को धार्मिक उन्माद के रूप में देखते हैं। भर्तृहरि ने धर्म के आधार पर ही मनुष्यत्त्व स्वीकार किया है–

आहार निद्रा भय मैथुनं च सामान्यमेतत् पशुभिर्नराणाम् ।
धर्मो हि तेषामधिको विशेषः धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः।।[2]

आहार, निद्रा, भय, मैथुन ये सभी मनुष्य तथा पशु में सामान्य रूप से पाये जाते हैं। मनुष्य में कथित धर्म विद्यमान होता है। इसी कारण से वह मनुष्य कहा जाता है। मनुष्य मन् धातु से बना है। मनुष्य का अभिप्राय ही होता है, जिसमें चिन्तन तथा मनन करने की क्षमता हो।

उपर्युक्त धर्मों के लक्षण के आधार पर क्या कोई भी बुद्धिजीवी भारतीय धर्म मीमांसा को संकीर्ण कह सकता है। उपर्युक्त दशलक्षणों के आधार पर यदि मनुष्य आचरण करने लगे तो समाज का विलक्षण स्वरूप होगा। हमारी ऋषिचर्या में मानवाधिकार से अधिक मानव कर्त्तव्य पर जोर दिया है।
धर्म में विकृति नहीं होती है, विकृति मनुष्य के मन में होती है। मनुष्य अपनी स्वार्थ और लिप्सा से धर्म की गलत व्याख्या कर समाज और स्वतः को हानि पहुँचाता है।

धर्म की उत्पत्ति मनुष्य के भीतर सतत विद्यमान आध्यात्मिक भूख से होती है, जो मनुष्य में पूर्णता का भाव भरती है। प्रो0 राजेन्द्र प्रसाद अपनी पुस्तक दर्शनशास्त्र की रूप रेखा में कहते हैं–
सभी धर्मों का उद्देश्य व्यवहारिक होता है। आध्यात्मिक मूल्यों की उपलब्धि से जीवन की पूर्णता प्रदान करना।[3]

पुरुषार्थ चतुष्टय में अर्थ भी अति महत्त्वशील है। मनुष्य के लिए आवश्यक है कि उसके पास धन हो, वह आर्थिक दृष्टि से सुसम्पन्न हो। अर्थ का एकत्रीकरण तथा उसका सदुपयोग तथा दान तीनों आवश्यक है। यजुर्वेद में कहा गया है कि ऐश्वर्य ही भगवान है–

भग एवं भगवान अस्तु, देवास्तेन वयं भगवन्तः स्याम्।
तथा वयं स्याम पतयो रयीणाम्।[4]

ऋग्वेद में विवेचित है कि द्युलोक, अन्तरिक्ष, पृथिवी तथा समुद्र सभी स्थलों पर धन विद्यमान है, परन्तु उस धन को बुद्धि तथा पुरुषार्थ के द्वारा उपार्जित करना चाहिए। यजुर्वेद में कहा गया है– उदधिर्निधिः इसके साथ ही साथ पृथ्वी को रत्नगर्भा कहा गया है। ऋग्वेद के ये मंत्र ध्यातव्य है–

यदन्तरिक्षे ये दिवि नृणां तद्धत्तमश्विना।[5]
तथा–समेयो विप्रो भरते मती धना।[6]

वैदिक ऋषि स्वीकार करता है पुरुषार्थ के साथ धनोपार्जन करना चाहिए। पुरुषार्थ से अर्जित धन ही सुख प्रदान करता है। अथर्ववेद में कहा गया है कि हम ऐश्वर्यवालों में सर्वश्रेष्ठ हों और अपने समान वालों में अग्रणीं हों–

मूर्धाहं रयीणां मूर्धा समानानां भूयासम।[7])

अन्याय से उपार्जित धन स्थायी नहीं होता–

अन्यायोपार्जितं वित्तं दश वर्षाणि तिष्ठति।
प्राप्ते चैकादशेवर्षे समूलं तद् विनश्यति।[8]

आज मनुष्य अर्थोपार्जन में विवेक शून्यता के साथ संलग्न है, यही कारण है कि अर्थ शुचिता का गहरा संकट हमारे समक्ष है। भ्रष्टाचार की स्थिति में वृद्धि होती जा रही है। ऐसे में शास्त्र चेतना का ग्रहण आवश्यक है–

मातृवत् परदारेषु परद्रव्येषु लोष्ठवत्।
आत्मवत् सर्वेभूतेषु यः पश्यति सः पण्डितः।।[9]

तृतीय पुरुषार्थ काम मनुष्य की जीवनचर्या की दृष्टि से अति आवश्यक है। पुरुषार्थ चतुष्टय काम के व्यापक अर्थ को ग्रहीत किया गया है। संसार प्रपंच के मूल में काम है। सन्तानोपत्ति का आधार ही काम है, परन्तु यह काम धर्म सम्मत हो वैदिक ऋषि और भारतीय मनीष इस पर विशेष जोर देती है। काम के मूल में उद्यम है। आत्मकल्याण की दृष्टि से उधम से श्रेयस्कर कुछ भी नहीं है जैसा कि कहा गया है–

उद्यमेन हि सिध्यन्ति कार्याणि न मनोरथैः।

वैदिक ऋषि कहता है–चरैवेति चरैवेति।

हमारे यहाँ उद्यम और कर्म को अधिक महत्त्वदिया गया है–

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः।
एवं त्वयिनान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यतेनरः।। [10]

जो परिश्रम और कर्मठता के साथ कामना करता है उसको ही अभीष्ट की प्राप्ति होती है। जैसा कि वैदिक ऋषि कहता है–

इच्छन्ति देवाः सुन्वतं, यन्ति प्रमादमतन्द्राः। [11]

मोक्ष मानव का परम पुरुषार्थ है, जो इसे प्राप्त नहीं करता उसे आत्महा कहा जाता है। जैसा कि वेदव्यास भागवत पुराण में कहते हैं–

नृदेहमाद्यं सुलभं सुदुर्लभं
प्लवं सुकल्पं गुरूकर्णधारम्।
मयानुकूलेन नभः स्वतेरितं
पुमान् भवाब्धिं न तरेत् स आत्महा। [12]

मोक्ष के लिए साधक में प्रबल उत्कण्ठा भाव होना चाहिए। मोक्ष प्राप्ति हेतु अधिकारित्व अपेक्षित भगवान् शंकराचार्य ने मोक्ष के अधिकारी हेतु अनिवार्य तत्त्व बतलाए हैं–

इहामुजार्थफलभोग विराग्..... [13]

श्रीमद्भगवद् गीता में भी अधिकारिभाव को स्पष्ट किया गया है–

मात्रा स्पर्शास्तु कौन्तेय शीतोष्ण सुखदुःखदाः।
आगमा पायिनोऽनित्यसास्तान् तिति क्षस्व भारत।।
यं हि न व्यथयन्त्येते पुरुषं पुरूर्षभ।
समसुखदुःखं धीरं सोऽमृत्वाय कल्पते।। [14]

मोक्ष का अभिप्राय है अविद्या अथवा अज्ञान का नाश–मोक्षप्रतिबन्धनिवृत्तिमात्रम् एवं आत्मज्ञानस्यफलम्। शंकराचार्य दो प्रकार की मुक्ति स्वीकार करते हैं–

(1) जीवन मुक्ति (2) विदेहमुक्ति।

जिस व्यक्ति को ज्ञान प्राप्त हो जाता है वह तत्काल मुक्त हो जाता है। भौतिक रूप से वह विद्यमान रहता है। विदेह मुक्ति में भौतिक शरीर का नाश हो जाता है। 'या विद्या या मुक्तये' का अभिप्राय यही है कि लोभ, मोह, द्रोहादि से मुक्ति। यह भगवान शंकराचार्य के जीवन मुक्ति का भी अभिप्राय है।

उपर्युक्त विवेचन के आलोक में हम कह सकते हैं कि भारतीय मनीषा में पुरुषार्थ को अत्यन्त महत्त्व दिया गया है। स्वयं की उन्नति, समाज की उन्नति तथा विश्व की उन्नति के लिए पुरुषार्थ परम औषधि है। ईश्वर हमें सदैव पुरुषार्थ और ज्ञान प्राप्ति के लिए प्रेरित करते हैं। जैसा कि वैदिक ऋषि कहता है–

क्रत्वे दक्षाय नो हिनु। [15]

पुरुषार्थ से ही मनुष्य सर्वतोभावेन सन्तोष और परितोष तथा समृद्धि को प्राप्त करता है। ईश्वर भी उसी की सहायता करता है जो पुरुषार्थी होता है। आज समाज अकर्मण्यता सर्वत्र दृष्टिगोचर हो रहा है। युवा वर्ग सरकारी नौकरी को लेकर चिन्तित दिखायी पड़ रहा है। यदि मनुष्य सच्चे अर्थों में पुरूषार्थी हो जाये तो एक उन्नत राष्ट्र की निर्मिति सम्भव है।

निष्कर्ष

भारतीय संस्कृति में पुरुषार्थ चतुष्टय मानव जीवन की समग्र एवं संतुलित विकास–योजना प्रस्तुत करता है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष केवल दार्शनिक अवधारणाएँ नहीं हैं, बल्कि वे मानव जीवन के नैतिक, सामाजिक, आर्थिक और आध्यात्मिक आयामों को संतुलित करने वाले आधारभूत सिद्धान्त हैं। धर्म मनुष्य को कर्तव्यपरायणता, नैतिकता और सामाजिक उत्तरदायित्व का बोध कराता है; अर्थ जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति तथा सामाजिक समृद्धि का माध्यम बनता है; काम मानव की रचनात्मक इच्छाओं, कर्मशीलता और प्रगति की प्रेरणा प्रदान करता है; जबकि मोक्ष व्यक्ति को आन्तरिक स्वतंत्रता, आत्मज्ञान और मानसिक शान्ति की ओर अग्रसर करता है।

समकालीन समाज में बढ़ते नैतिक पतन, भ्रष्टाचार, उपभोक्तावाद, मानसिक तनाव और सामाजिक विघटन की परिस्थितियों में पुरुषार्थ चतुष्टय की पुनर्स्थापना अत्यन्त आवश्यक प्रतीत होती है। यह

सिद्धान्त व्यक्ति को केवल भौतिक सफलता तक सीमित नहीं रखता, बल्कि उसे आत्मिक उन्नति और लोकमंगल की दिशा में भी प्रेरित करता है। विशेषतः युवाओं के लिए पुरुषार्थ का आदर्श कर्मठता, आत्मनिर्भरता, नैतिक जीवन और राष्ट्रनिर्माण की प्रेरणा प्रदान करता है।

अतः कहा जा सकता है कि पुरुषार्थ चतुष्टय भारतीय जीवन–दर्शन का ऐसा शाश्वत सिद्धान्त है, जो आधुनिक युग की चुनौतियों के बीच भी मानवता को संतुलित, समृद्ध और मूल्यनिष्ठ जीवन की दिशा प्रदान करने में पूर्णतः सक्षम है। इसकी समन्वित दृष्टि व्यक्तिगत विकास, सामाजिक सद्भाव और वैश्विक कल्याण के लिए आज भी उतनी ही प्रासंगिक है जितनी प्राचीन काल में थी।

संदर्भ

1. *मनुस्मृति 6/92*
2. नीतिशतकम् श्लोक 18
3. दर्शनशास्त्र की रूपरेखा, पृ0 14
4. *यजुर्वेद 10/20*
5. *ऋग्वेद 8/9/2*
6. *ऋग्वेद 2/24/13*
7. *अथर्ववेद 16/3*
8. *सुभाषित रत्नावली, श्लोक 48*
9. *चाणक्य नीति श्लोक 37*
10. *यजुर्वेद 40/2*
11. *ऋग्वेद 8/2/18*
12. भागवत पुराण 11/20/17
13. वेदान्तसार पृ0 07
14. *गीता 2/14–15*
15. *ऋ0 9/36/3*